जिस सामाजिक न्याय को BJP ने रोक दिया उसकी नई राह खोलकर मंडल-3 की गाड़ी हांक सकते हैं राहुल

राहुल गांधी का कोलार वाला भाषण किसी क्षणिक आवेग की देन नहीं. कांग्रेस कुछ बड़ा करने के फिराक में है. पार्टी सामाजिक न्याय की अपनी खोयी हुई जमीन हासिल करने की कोशिश कर रही है.

योगेंद्र यादव

क्या राहुल गांधी का कर्नाटक के कोलार वाला भाषण सामाजिक न्याय की राजनीति में एक नये मोड़ की सूचना है? कांग्रेस से मंडल की गाड़ी छूट गई. जब मंडल-2 की गाड़ी खुली तब भी कांग्रेस इसमें अनमने भाव से सवार हुई. लेकिन क्या मंडल-3 की गाड़ी कांग्रेस खुद ही हांकने जा रही है? क्या देश इस नये बदलाव के लिए तैयार है? और, क्या खुद कांग्रेस इस उलटफेर के लिए तैयार है?

हो सकता है, आपको लगे कि मैं एक पतली सी खूंटी पर कुछ ज्यादा ही झोले लटकाने पर आमादा हूं. दरअसल, था तो वो एक चुनावी भाषण ही. 'मोदी' उपनाम को लेकर पैदा विवाद में राहुल गांधी पर ओबीसी-विरोधी होने के आरोप लगे और वे ऐसे आरोप से आग-बबूला थे. तो उन्होंने बाजी पलट दी और गेंद बीजेपी की पाले में खिसकाते हुए उससे कुछ मुश्किल सवाल पूछ लिए हैं कि 'ओबीसी के खैरख्वाह हो तो बता दो मेरे इन सवालों के जवाब`. अपने भाषण में राहुल गांधी ने अचरज भरे स्वर में पूछा कि आखिर एससी/एसटी/ओबीसी समुदाय से सचिव स्तर के केवल 7 ही अधिकारी क्यों हैं ? उन्होंने सवाल किया कि आखिर जातिवार जनगणना से बीजेपी भाग क्यों रही है (जाति-जनगणना की जरूरत बताते हुए मैं पहले भी इस मुद्दे पर लिख चुका हूं. सो, यहां मैं अपनी बातों को दोहराऊंगा नहीं) और वह साल 2011 में हुए सर्वेक्षण के आंकड़े सार्वजनिक क्यों नहीं कर रही? राहुल गांधी ने मांग की कि आरक्षण पर लगी अधिकतम 50 प्रतिशत की सीमा को हटाया जाये. क्या यह साईत-संयोग दिखायी देने वाली, मुंहतोड़ जवाब देने की जबर्दस्त चाल भर है या इसमें बात कुछ और भी है?

किसी गफलत में रहने की जरूरत नहीं. आप जरा उस तेवर पर गौर करें जब राहुल गांधी ने ये सवाल पूछे– यह उनके दृढ संकल्प का पता दे रही है. ये बात किसी से छिपी नहीं कि राहुल गांधी डॉ. बी.आर आंबेडकर के विचारों और कांशीराम की राजनीति को इस देश के अधिकतर राजनेताओं (बसपा समेत) की तुलना में कहीं ज्यादा गंभीरता से लेते हैं. गौर कीजिए कि कोलार वाले भाषण में उन्होंने जो भी बातें कहीं (आरक्षण पर लगी अधिकतम 50 प्रतिशत की सीमा को छोड़कर) वे सारी बातें फरवरी में रायपुर में हुए कांग्रेस अधिवेशन के प्रस्ताव में पहले ही आ चुकी हैं. प्रस्ताव झलक देता है कि आगे के दिनों में क्या कुछ होने जा रहा है. और, जरा उस चिट्ठी को भी ध्यान में रखें जो मल्लिकार्जुन खड़गे ने प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी को राहुल गांधी के भाषण के अगले दिन लिखी –इस चिट्ठी में खड़गे ने राहुल गांधी की मांग को दोहराया है.

गंवायी जमीन हासिल करने की कवायद

कोलार वाला भाषण क्षणिक आवेग से ऊपजा भाषण नहीं था. कांग्रेस कुछ बड़ा करने के फिराक में है. पार्टी सामाजिक न्याय की अपनी खोयी हुई जमीन हासिल करने की कोशिश कर रही है. कांग्रेस कभी गरीब, दलित, आदिवासी तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों की पसंदीदा पार्टी हुआ करती थी. समाज के अन्य वर्गों की तुलना में इन तबकों के वोट अब भी कांग्रेस को कहीं ज्यादा मिलते हैं. लेकिन, कांग्रेस के नेतृत्व, नीति तथा कार्यक्रमों में इस जमीनी सच्चाई की झलक मिलनी बंद हो गई है. राहुल गांधी इसी दोष को दूर करना चाहते हैं.

लेकिन, ऐसा करना आसान साबित नहीं होने जा रहा. जैसा कि यूनानी दार्शनिक हेरक्लिटस ने कहा हैः आप एक ही नदी में दोबारा नहीं उतर सकते. सामाजिक न्याय की राजनीति वैसी नहीं रही जैसी कि सन् 1990 के दशक में हुआ करती थी. और, कांग्रेस जो कुछ तीन दशक पहले कर सकती थी वैसा आज नहीं कर सकती. सामाजिक न्याय की राजनीति और नीतियों से जुड़ी नई चुनौतियों से निबटने के लिए कांग्रेस को अपनी प्राथमिकताओं तथा रणनीतियों पर नये सिरे से विचार करना होगा.

ऐसे पुनर्विचार की शुरूआत इस सच की पहचान से होनी चाहिए कि सामाजिक न्याय की राजनीति तथा नीतियां बहुत पहले ही उस मुकाम पर पहुंच चुकी हैं जहां लिखा हुआ हैः आगे रास्ता बंद है ! यही वजह है जो यह(सामाजिक न्याय) राजनीति बीजेपी की विचारधाराई और राजनीतिक फांस का आसान शिकार बन गई. एक दशक से भी ज्यादा हुआ जब मैंने सामाजिक न्याय की नीतियों और राजनीति की समीक्षा करते हुए ये बात लिखी थी.(तब मेरे चलताऊ चुनावी पूर्वानुमानों को कहीं ज्यादा गंभीरता से लिया जाता है बनिस्बत उन दिनों के मेरे गंभीर लेखन के). मैंने लिखा था कि सामाजिक न्याय किसी पतली पन्नी की तरह हो चला है जिसमें कोई चाहे कुछ भी लपेट ले. सामाजिक न्याय का रिश्ता सामाजिक वर्गों के प्रतिनिधित्व से कहीं ज्यादा है, जाति-व्यवस्था से पैदा भेदभाव, वंचना तथा अभावों के निवारण से कम. बरंग होती जा रही सामाजिक न्याय की कल्पना से इस बात का सीधा रिश्ता है.

सामाजिक न्याय की राजनीति एक भूल-भूलैया में आ फंसी है– इसके लक्षण हर कोण से दिखायी दे रहे हैं. एक लक्षण तो यही है कि हिन्दीपट्टी में सामाजिक न्याय का प्रतिनिधित्व करने वाली बसपा, सपा और राजद जैसी पार्टियों का बेशक पतन नहीं हुआ हो लेकिन इन पार्टियों की चुनावी और सियासी गति में ठहराव आ चुका है. दूसरे, सामाजिक न्याय की पैरोकारी एकजुट और एकमूठ नहीं हो रही– दलित, आदिवासी, ओबीसी तथा मुस्लिम के हित से जुड़े मुद्दे ना सही एक-दूसरे के विरोध में तो भी एक-दूसरे से अलग रख और समझ कर मुखर किये जाते हैं. तीसरी बात, सामाजिक न्याय के पक्षधर और पैरोकार जाति-जनगणना जैसे सवालों पर भी विचारधाराई तौर पर अपने बचाव की मुद्रा में नजर आते हैं जबकि उन्हें ऐसा करने की कत्तई जरूरत नहीं. चौथी बात कि चारो तरफ से घिर जाने की सी हालत में होने से सामाजिक न्याय के पक्षधर अंदर से उठने वाली चुनौतियों की अनदेखी करने लगे हैं, मिसाल के लिए आरक्षण के कोटे के भीतर उप-कोटा देने का मुद्दा. और, इस सिलसिले की आखिरी बात ये कि इन तमाम वजहों से सामाजिक न्याय के पूरे ढांचे में ईडब्ल्यूएस कोटा जैसी कवायदों के जरिए सेंधमारी होने लगी है.

नई राह खोलनी ही होगी

राजनीति में बंद रास्ते के आखिरी सिरे पर आप ज्यादा देर तक खड़े नहीं रह सकते. कोई पीछे से आयेगा, आपको धक्का देकर उस तरफ मोड़ देगा जिधर आप जाना ही नहीं चाहते थे. या फिर, वह आपकी गठरी-पोटली का सारा कुछ समेटकर चल-चंपत हो लेगा. बीजेपी ने दरअसल सामाजिक न्याय की राजनीति के साथ यही किया है. उसने चुनिन्दा तरीके से सामाजिक न्याय के पक्षधर नेताओं को पार्टी में खिंच लाने की कुटिल लेकिन कामयाब चाल चली. सामाजिक न्याय के प्रतीकों को अपने हितों के हिसाब से ढ़ाल लिया और बहुजन-समाज के अपेक्षाकृत छोटे संख्या-बल वाले उप-समुदायों को अपने खेमे में खींच लिया.

ये चुनौतियां आज कांग्रेस के सामने हैं. इस अफसोसनाक दुर्दशा से निकलने के लिए सामाजिक न्याय की राजनीति और नीतियों पर सचेत होकर पुनर्विचार करने की जरूरत है. इस पुनर्विचार की शुरूआत नीचे लिखे जा रहे चार ठोस विचारों के सहारे हो सकती हैः

पहली बात यह कि कांग्रेस को अपनी खोयी जमीन हासिल करने के साथ ही साथ सामाजिक न्याय की नये दायरों पर कब्जा जमाना होगा. फिलहाल सामाजिक न्याय से जुड़ी सोच सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों में आरक्षण तक सिमटी है जबकि इन क्षेत्रों में नौकरियां तेजी से कम होती जा रही हैं. बेशक सरकारी क्षेत्र के भीतर कुछ दायरे ऐसे हैं जिन पर दावा जताने की जरूरत है (रायपुर अधिवेशन के प्रस्ताव में ठीक ही उच्चतर न्यायपालिका में एससी-एसटी-ओबीसी को प्रतिनिधित्व देने की बात कही गई है) लेकिन आज मुख्य जोर गैर-सरकारी क्षेत्र जैसे मीडिया तथा एनजीओ (स्वयंसेवी संगठन) में प्रतिनिधित्व बढ़ाने पर होना चाहिए. रायपुर अधिवेशन के प्रस्ताव में ठीक ही इस चर्चा की शुरूआत की गई है कि निजी क्षेत्र की नौकरियों तक सभी वर्गों की समान पहुंच होनी चाहिए.

दूसरी बात, कांग्रेस को खुलकर इस विचार की तरफदारी करनी चाहिए कि आरक्षण की नीतियों के लाभार्थी लक्षित वर्गों पर पुनर्विचार की जरूरत है ताकि आरक्षण का लाभ इन वर्गों को बेहतर तरीके से मिले. इस सच्चाई से हम कतराकर नहीं भाग सकते कि: सत्तर सालों से जारी आरक्षण की नीति ने कुछ निहित स्वार्थ पैदा किये हैं जो नहीं चाहते कि आरक्षण का लाभ उनके दायरे से आगे भी पहुंचे. इन स्वार्थों ने मंडल की राजनीति पर कब्जा कर लिया है. कांग्रेस को इस स्थिति को चुनौती देनी चाहिए. उसे कहना चाहिए कि एससी, एसटी तथा ओबीसी के भीतर आरक्षण के लिए उप-कोटा बनाया जाये और हाँ अगर किसी उप-कोटा में पद खली रह जाएँ तो उन्हें `सामान्य श्रेणी` में ना डाला जाये. मुस्लिम अल्पसंख्यकों में पसमांदा के सवाल को मुखरता से उठाना चाहिए. इसी तरह, कांग्रेस को यह भी कहना चाहिए कि जिन परिवारों और समुदायों को कोटा का फायदा मिल गया है उन्हें आरक्षण के लाभार्थियों की कतार में सबसे पीछे रखा जाय.

तीसरी बात, कांग्रेस को देर-सबेर सामाजिक न्याय हासिल करने के नये तरीके खोज निकालने होंगे ताकि वंचित तबकों के सशक्तीकरण का विचार सिर्फ जाति-आधारित आरक्षण-व्यवस्था बनकर ना रह जाये. हमारे समाज में असमनाता के कई रूप और रंग हैं, इनमें चढ़ा-ऊपरी मिलती है और ये आपस में गुत्थमगुत्था मिलते हैं. ऐसी असमानता को सिर्फ जाति, वर्ग या लिंग के एकहरे चश्मे से नहीं पहचाना जा सकता. हमें वंचित वर्गों के सशक्तीकरण के विचार को सिर्फ जाति-आधारित मानकर चलने की रीति को धीरे-धीरे

सुधारना होगा. हमें वंचित वर्गों के सशक्तीकरण के तौर-तरीके इस बेहतरी से तैयार करने होंगे कि इसका दायरा सिर्फ आरक्षण तक सीमित ना रहे. ऐसे कुछ तौर-तरीकों को राजनीतिक समर्थन की जरूरत है जैसे- वंचना की स्थिति को दर्शाते सूचकांक के आधार पर वेटेज(अधिमान) देना, निजी क्षेत्र को किन्हीं मामलों में प्रोत्साहित और हतोत्साहित करना तथा सामाजिक न्याय के लिए जरूरी सूचनाओं को सार्वजनिक करने संबंधी मजबूत प्रावधान.

चौथी बात, सामाजिक न्याय की नीतियों के संस्थागत ढांचे को नया करने की जरूरत है. रायपुर वाले अधिवेशन के प्रस्ताव में ओबीसी के लिए अलग से एक मंत्रालय तथा एक राष्ट्रीय सामाजिक न्याय परिषद् बनाने की बात कही गई है. एक महत्वपूर्ण बात यह भी कही गई है कि सालाना सामाजिक न्याय रिपोर्ट बने और चर्चा के लिए संसद में पेश की जाये. इस किस्म के चुस्त-चौकस तौर-तरीकों पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए. ऐसा ही एक उपाय है समान अवसर आयोग (इक्वल ऑपर्च्युनिटी कमीशन) बनाना और उसे वैधानिक दर्जा देना. दुनिया के कई देशों में ऐसे आयोग का चलन है और यूपीए के शासन के समय यह विचार एक समिति ने दिया था (मैं इस समिति का एक सदस्य था)

राहुल गांधी अपने कोलार वाले भाषण के रास्ते पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे उन्हें दिख पड़ेगा कि किसी वक्त कांग्रेस से मंडल की गाड़ी का छूट जाना आज के समय में पार्टी के लिए फायदे का साबित हो सकता है. सामाजिक न्याय के पक्षधर और पैरोकार अन्य दलों की बनिस्बत उनकी पार्टी(कांग्रेस) का मुख्य समर्थक आधार ओबीसी-समुदाय का ताकतवर भूस्वामी तबका नहीं जो सामाजिक न्याय की नीतियों की नोंक-पलक संवारने और उसके फायदे वंचित तबके के ज्यादा से ज्यादा लोगों के बीच ले जाने की राह रोक सके. बीजेपी ने जकड़बंद दलित तथा आदिवासी नेतृत्व को चुनौती देकर मैदान पहले से ही साफ कर रखा है. ऐसे में सामाजिक न्याय की नीतियों और अमल में बुनियादी बदलाव किये जा सकते हैं. राहुल गांधी को अपने सफर में भान होगा कि राजनीति में, कमजोरी दरअसल शक्ति का स्रोत साबित हो सकती है और छोटा होना सुंदरता का लक्षण हो सकता है.